8·1

[illegible]यानुगामिनी

गि-५

पथानुगामिनी

लेखक
निहाल चन्द्र जैन एम०एस०सी०
व्याख्याता
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
पृथ्वीपुर (टीकमगढ़ म०प्र०)

प्रकाशक
बाबूलाल जैन जमादार
मंत्री अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद
१३६८, हाथीखाना, बड़ौत (मेरठ) उ०प्र०

प्रथमावृत्ति
११००

दिसम्बर
१९६८

मूल्य
डाक व्यय १० पैसा

अपनी बात

अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद का ४२वां पुष्प विज्ञ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। नवयुवकों की विशेष माँग पर 'पथानुगामिन" उन्हीं को समर्पित है। वह कितना लाभ इस पुस्तक से उठाते हैं यह तो युवकों का अध्ययन बतावेगा।

इस पुस्तक में प्राचीन और अर्वाचीन कथाओं कहानियों का समावेश किया गया है। आलोचक बन्धु इसी दृष्टि से इसे देखें व पढ़ें। शास्त्रि परिषद् अपने पाठको को चारों अनुयोगों का साहित्य देने को कटिबद्ध है उसी के अनुसार साहित्य छप रहा है।

मेरी अधिक व्यस्तता व स्वास्थ्य की खराबी से साहित्य प्रकाशन में कुछ ढीलाई आयी थी कि दानियों से सम्पर्क हट जाने से कार्य रुका। पाठक क्षमा करें।

इस पुष्प के छपाने में श्रीमान् सेठ सुनहरा लाल जी जैन रईस आगरा और सेठ कमल कुमार जो जैन कोटकी वाले अवागढ़ निवासी ने अपने चि० प्रद्युम्न कुमार जैन एम० ए० एल० एल० बी० और सौभाग्यवती हीरामणी के शुभ पाणिग्रहण संस्कार पर दातव्य द्रव्य से मदद की। उनका शास्त्रि परिषद् आभारी है।

अपने विशेष लेखक श्री निहाल चन्द [illegible] एम० एस० सी० का भी आभार मैं कैसे भूलूं जिन्होंने पुष्प तैयार करके पाठकों को सोचने विचारने की सामग्री दी। आशा है दानी बंधु और लेखक बंधु अपना सहयोग इसी प्रकार देते रहेंगे।

बाबू लाल जैन जमादार
मन्त्री अ० भा० दि० जैन
शास्त्रि परिषद्

बड़ौत
२६ दिसम्बर ६८ ई०

प्राक्कथन

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद के मूल स्तम्भ लोक प्रिय समाज हितैषी धर्म रक्षक विज्ञान वाणीभूषण पं० बाबू लाल जी जमादार की सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र में की गई महानतम् सेवाओं के प्रति आज समस्त जैन समाज उनका आदर के साथ अभिनंदन करता है !

शास्त्री परिषद द्वारा जो साहित्य प्रकाशन का महानतम् प्रयोग किया गया है वह समाज जागृति एवम् धर्म प्रसारण की दृष्टि से अत्यत महत्व पूर्ण है। इस क्षेत्र में प्रसारित परिषद का प्रत्येक ट्रैक्ट एक विशेष ज्ञान निधि से सज्जित सुन्दर सन्चय के रूप में सामने आया है।

प्रस्तुत ट्रैक्ट भी अपनी एक नवचेतना को लेकर समाज के बीच प्रस्तुत हो रहा है। इस ट्रैक्ट के लेखक मड़ावरा (झाँसी) निवासी की बाबू निहाल चन्द्र जी एम०एस०सी० व्याख्याता शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पृथ्वीपुर जिला टीकमगढ म०प्र० एक सुयोग्य लेखक हैं। इस ट्रैक्ट में संगृहीत प्रत्येक कहानी में एक नवीन चेतना के साथ उस अलौकिक प्रतिमा और आदर्श के दर्शन होते हैं जो समाज को एक प्रेरणा एवम् सत्पथ की ओर लेजाने के लिये प्रेरित करते हैं। इनकी लेखनी में ओज और मौलिकता के पूर्ण रूप से दर्शन होते हैं।

इन कहानियों में जहाँ सामाजिक भावनाओं को साकार रुप में वर्णित किया गया वहाँ उनमें आध्यात्मिकता से युक्त एक समुन्नत दिशा के अवलोकन का प्रशस्त पथ दर्शाया गया है। यह कहानियाँ सामाजिक चेतना के प्रयोग में पूर्णत: सफल और समर्थ होगी, ऐसी आशा है।

हम शास्त्रि परिषद के साहित्य प्रकाशन जैसे सफल महान उद्देश्य की बार बार प्रशंसा करते हुए श्रीमान् पं० जमादार जी के विशेष कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस संस्था में अपना अमूल्य जीवन लगाया है।

साथ ही हम समाज के उन सभी महान उपकारी लेखकों और कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जितनी अमूल्य कृतियाँ शास्त्री परिषद के तत्वाधान में प्रकाशित होकर समाज के हाथों में पहुंची है।

विमल कुमार जैन सोंरया

२०दिसम्बर १९६८ मड़ावरा (झाँसी)

विषय-सूची

पथानुगामिनी

[१]

प्रासाद की अट्टालिकायें आज वियोगिनी की भांति वैभवों से वैराग्य और भावी वीतराग पुरुष को विदाई दे स्तब्ध सी खडी अपने को इसलिये धिक्कार रहीं हैं कि यह मेरा विशाल वैभव एक राजपुत्र की अर्चना का रजकण न बन सका चन्दनों की चौखटों पर मेरी ये रत्नजड़ित झालरें और वन्दन-वार मात्र उनके अभिवादन को तरसतीं रहीं। उस कान्ति को धिक्कार, जो उनका स्वागत न कर सकी।

उसी प्रासाद की आत्मायें आज हृदयहीन सी हो संसार के स्वरूप का परिचय पा रही हैं। राजमती मूर्छित हो एक पराजित की भाँति म्लान मुख किये मखमली बिस्तर से लिपटी पडी है। राजकुमारियाँ शीतोपचार में संलग्न, कई एक पंखा झल रही हैं तो कई एक ठण्डे गुलाब जल का उनके चन्द्रमुखी मुँह पर छिड़काव कर रही हैं। लेकिन मानस-आघात से विकल उसे क्या ··· ?

लम्बे अन्तराल के उपरान्त मूर्छा से उन्मुक्त राजमती चेतना में आयी। और अपने चारों ओर देखकर अपने को ही धिक्कारने लगी।

इतनी कठोर विरक्ति ············! मोह बिडम्बना का

इतना मार्मिक हनन········· ? ? मूक-प्राणियों के करुण क्रन्दन का इतना गहरा प्रभाव ··· !!!

कि राजपुत्र नेमि उनको बन्धन से मुक्त करवा स्वयं मुक्त होने के लिये गहन साधना और तपस्या के लिये जंगल और कन्दराओं की ओर चले गये।

भावी प्रणय बन्धन से इतना क्षोभ ············। दो हृदयों के बीच अंकुरित प्रेम का इतना तिरस्कार··· ··· जीवन के व्यामोह से इतनी उदासीनता······!!

अपने कोमल शरीर की इतनी चिन्ता भी नहीं की कि वह कैसे असहनीय ताप को सहेगा ? कठोर ठण्ड की निशीथ कैसे गुजरेगी ? क्या वे मेरी अभिलाषित भावना से अछूते रहे ? अपनी राज का जरा भी ध्यान नहीं हुआ ? ठीक भी है ············। जिन्होंने हजारों निरपराध आत्माओं की एक आवाज अपनी एक स्वतंत्र आत्मा के द्वारा पहिचानी और स्वयं को निमित्त मात्र जानकर उनके बन्धन मुक्ति के साध्य बन और अपनी साधना को साधने वे गहन कन्दर गुफाओं में क्यों न जायें ? आत्मकल्याण की यह बलवती प्रेरणा मेरे और इस राज वैभव के लिये एक अक्षम्य चुनौती है। मैं भी उनके पथ का अनुशीलन क्यों न करुँ ? जब एक बार हृदय ने अपना लिया तो त्यागना तो धृष्टता होगी, मिथ्या, पाखण्ड और स्त्रीत्व के परे होगा। यदि वे मुझे अपनाकर द्वारिका में लौटते तो क्या मैं उनकी अनुगामिनी न होती ? लेकिन यदि सच्ची साधना के लिये अरण्य की ओर चरण मुड़ गये तो क्या पीछे हट जाऊ ·········? नहीं! फिर तो यह झूठा मिलन होगा।

राजुल का बेबस हृदय न जाने जीवन के किन किन पक्षों का चिन्तन कर रहा था। विचारों की अगम्य गहराई

तक वह पहुँच चुकी थी। मानों वह दृढ़ प्रतिज्ञ सी हो रही हो। आत्मा की शक्ति तो अनन्त है। वर्तमान में भले ही संकुचित और अप्रकाशित हो। उसकी आत्म प्रेरणा ने भी उसे इस सांसारिक मोह पाश से ऊपर उठने के लिये उकसाया। सच्ची आवाज ने एक बार उसे झकोरा। इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग भी संसार का एक रूप है फिर इस पर क्यों इतना दुखी होना ... ? एक दिन तो विछोह निश्चित ही था।

[२]

मां ने असीम प्यार देकर दुलार से समझाया — 'बेटी राजुल! प्रणय बन्धन का मुख्य संस्कार पाणिग्रहण तो अभी हुआ ही नही। तुम तो अभी बिलकुल पवित्र हो। फिर अपने होने वाले प्राणेश्वर के वियोग से इतनी विकल क्यों ? इस आर्यावर्त में अभी सैकड़ों सुन्दर और रूपवान राजकुमार विद्यमान हैं। जिसके साथ जन्मजन्मान्तरों का सम्बन्ध लिखा है, उसी से होकर रहेगा। भाग्य की अमिट रेखा को कोई नहीं मिटा सकता। अनहोनी को कौन टाल सकता है? राज– मती एक अपराधिन की भांति अपने को नियंत्रित कर बोली, "लेकिन माँ श्री! हृदय तो पहले ही प्रणय बन्धन में बँध चुका है। एक बार हृदय ने जिसको चाह लिया, वह फिर किसी दूसरे को नहीं दिया जा सकता। मुझे वियोग नहीं, अपितु उनकी चुनौती दुखी कर रही है। अतः मेरा यह सम्बन्ध अब सदा के लिये अटूट रहेगा और मैं उनके सच्चे पथ की अनुगामिनी बन आत्मकल्याण करूँगी।

यानी कठिन तपश्चरण ·······? मां श्री नें शंकित भाव

से पूछा ।

"हां जितेन्द्रिय होने के लिये जिन संघर्षों से जूझना होगा जितना दुर्द्धर तप करना पडेगा जितने परिषह सहन करने होंगे करुंगी ।"

"फूल से कोमल शरीर में इतनी क्षमता कहाँ होगी प्यारी बेटी! चरित्र को इतनी ऊँची पराकाष्ठा तक पहुंचना महादुर्लभ होगा। साधनायें सिद्ध करने हेतु तुम्हारा शरीर इतना कठोर नहीं है। अरण्य की घोर यातनाओं को कैसे सहोगी ? तुम्हें इन राजमहलों में किस वैभव की कमी है। भावुक हो अपने अनन्त अरमानों को इतनी भावनाहीन हो मत कुचलो।"

"माँ श्री! मुझे इस नश्वर वैभव की मृग–तृष्णा नहीं। क्योंकि इनके प्रति रागादिभाव हो कर्मबन्ध के कारण हैं। कर्मों की निर्जरा के लिए कठोर शरीर की नहीं, कठोर आत्म बल की आवश्यकता होती है। सच्ची साधना आत्मा की प्रेरणा से होती है। मेरे अरमानों का मूल्यांकन एक युग–पुरुष द्वारा आँक लिया गया है। मिथ्या अरमानों की क्या लालसा··· ? राजमती ने अपनी माँ को यथाशक्ति समझाया।

मेरे स्वाभिमान का इतना व्याघात न करो। प्यारी बेटी मेरी आकांक्षाओं पर इतना कुठाराघात न करो ····· । माँ की ममता को निहारो, पिता के स्नेह को बढ़ाओ।

लेकिन मां श्री ! कब तक ···········? मैं जीवन के पवित्र आदर्शों का हनन न होने दूंगी। आत्मा की आवाज को कुचलना आत्मघात होगा। अब तो मुझे मोह की ये विडम्ब–नायें निर्मूल और साग्हीन दीख रही है। जीव की सत्ता स्वतंत्र है। यदि तुम्हारे सुख को एक आत्मा अपने निश्चय स्वभाव की ओर अग्रसर होने के लिये जीवन से मोह न होकर

योग-साधना में अपने को स्वाह कर दे तो यह तुम्हारी आकांक्षा की सबसे बड़ी साध होगी। उस माँ की आत्मा कितनी धन्य होगी, जिसकी बेटी आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्ति करे।"

× × ×

"प्यारी सखि राज! यौवन का इतना परिहास ... ! अद्वितीय रूप का इतना तिरस्कार...... !! माँ श्री की ममता पर इतना निर्मोहीपना.........!!! स्नेही पिता के स्नेह से इतनी विरक्ति!!!

आखिर तुझे हो क्या गया? तेरे खिल रहे अंग तुझे ऐसा करने के लिये इजाजत दे रहे हैं? अपनी अभिन्न सखियों के प्रेम का यही बदला...... । हम तुम्हारे सुख के लिये अपने सुखों के समर्पण करने की साध भी पूरी न कर सके।" एक कुशल सखि ने राजमती से अपना मन्तव्य रखा।

"प्यारी सखि अरुणे! तुम्हारे प्रेम को अपमानित करने का दुःसाहस कहाँ? और रही यौवन और रूप की बात सो यह नश्वर है, परिवर्तनशील है। आखिर इसका अंतिम रूप माँस मज्जा के सिवाय और क्या है? माँ की ममता और पिता का स्नेह मेरे इस भौतिक शरीर से है। स्वतंत्र आत्मा पर किसका अधिकार? यदि इन्हे मेरी आत्मा से ममता और स्नेह होगा तो कभी भी वह इसको अपने स्वाभिमान का व्याघात न समझेंगे। सखि! इस अल्पकाल में ही जीवन की वास्तविकता का नग्न चित्रण मेरी आँखों के सामने झूल रहा है। अज्ञानी जीव तो मोह की माया में बेसुध है, लेकिन यदि ज्ञानी को कारण मिलने पर भी उसे सुपथ न दीखे तो उस जैसा पतित और कोई नहीं होगा। मैं क्षमा प्रार्थिनी हूँ, मुझे इस कल्याण मार्ग से न डिगायें।

[३]

राजुल ने आभूषण छोड़े, उनसे मोह छोड़ा। राजसी—परिधान उतारे, उनकी इच्छा त्यागी। केशों से सुगन्धित हँसते फूल अलग किये। मोतियों की झूमरी और मालायें गले से उतारी। पैरों की रत्न जड़ित पायलें और कटि बन्धन अलग किये, क्योंकि वह तो भौतिक वैभव से उदासीन हो चुकी थी। उसका रूप क्षण क्षण और का और हो रहा था। पैरों की लाली अपने हाथ से धोयी। अब वह शिव वर की अन्वेषण में भव्य प्रासादों को छोड रही है। जहाँ संसार की अनन्त आत्मायें जाकर पुनः इस दुखी ससार में नहीं आती। सखियों के आँसू पोंछे। कुटुम्बी जनों से क्षमा माँगी।

क्षण में भाग्य का पाँसा कैसे पलटा ? कहाँ माङ्गलीक उत्सव ····· ? कहाँ वन गमन की तैयारी ·········· ? कहाँ माङ्गलिक सुरीली स्वर लहरियों और संगीत से भरा मन मोहक वातावरण ········ ? कहाँ ऐसा करुण—क्रन्दन···? कहाँ एक ओर परिवार—बन्धन का शुभ मुहूर्त ········· ? कहाँ दूसरी ओर यह सूनापन एवं नीरवता······ ···? इसी का नाम तो संसार है, यही तो इसका स्वरूप है। फिर राजुल क्यों विरक्ति न ले ? उसे तो अवसर चाहिए था सो मिल गया। अब तो उसे जगत की क्रीड़ायें मिथ्या लग रही हैं।

प्रासादों को आज उसका अंतिम नमस्कार था। अभी तक आभुषणों को सँवार २ कर अपना चन्द्रमुखी मुँह देखती

थी, अब वे मूल्यहीन आभूषण उसका मुँह देख रहे थे। जो स्वर्ण–जड़तारों की साड़ी उसके अंगों से लिपट कर हँसती थी, आज फीकी हो गयी। वे सुन्दर–२ फूल मुरझा गये क्योंकि उनकी चिर साथिनी आज उन्हें छोड़ योगिनी बनने जा रही है। मन बदला तो सभी वस्तुये बदली सी हो गयी।

[४]

क्षण भर के लिये सुप्त भावना पुनः जाग्रत हुई। क्योंकि मोह का पूर्ण निवारण अभी हुआ कहाँ था ?

योगिनी बनने जा रही थी, बनी नहीं थी। राजमती का रुप और यौवन अपने भावी प्राणेश्वर नेमि के दर्शन कर पुनः मुस्करा उठा। ममता पुनः जागी। शायद प्रभु बात मान जायें उन्हे इस दुखिया पर तरस आ जाये। मेरे व्यथित हृदय की गहराई को नाप सके .... !

लेकिन वहाँ क्या था,'.. केवल ध्यान!!" हाथ जोड़ विनम्र हो बोली"लेकिन प्राणेश्वर! जो मैं सहधर्मणी होने जा रही थी। क्या मैं इतनी निकृष्ट होती .. ..? क्या मैं इतनी कामेच्छा और लिप्सा की अभिलाषिनी होती ......, क्या आपके लिये मैं इतनी अपराधिनी सिद्ध होती ......? कि यदि तुम्हें वन को जाना होता और ये कठोर साधना करनी होती तो तुम्हारे मार्ग मे मैं अवरोधक बन स्वय अनुगामिनी न बनती ? जब सहधर्मणी होती तो तुम्हारे सुख में मेरा सुख पनपता। और यदि आप आत्मकल्याण की ओर जाते तो क्या मुझे आपकी प्रेरणा उस ओर चलने की बलवती माँग नही करती .. ..? तुम्हें उन मूक पशुओं की वेदना पर इतनी करुणा आती लेकिन मेरे हृदय के मूक क्रन्दन पर जरा भी ध्यान न दिया। यदि आप में इतना उत्कृष्ठ पौरुष

है कि इस महान साधना को झेल सकते हो तो मैं तुम्हारी होनेवाली अभागिनी इतना भी स्त्रीत्व न रखती कि इसका भी अनुशीलन कर सकती ?

लेकिन उन योगिश्वर नेमि के पास……… "धर्मवृद्धि" के सिवाय उस राजमती के लिये और क्या था। और राजुल कहती ही गयी, "लेकिन प्रभु!! ऐसा कौन सा अक्षम्य अपराध हो गया जो इस हतभागिनी से मुँह तक नहीं बोल रहे हैं। किस भूल का यह महान प्रायश्चित है ? क्या मेरे में कलंक या आपके स्वागत और अतिथ्य में सम्मान का अभाव था ?

योगिश्वर नेमि ने ध्यान भंगिमा खण्डित की एक दूसरी भव्य आत्मा को सम्बोधने तथा कल्याण की ओर झुकाने के लिये बोले, "उस अनन्त ज्ञान पिण्ड चैतन्य स्वभाव आत्मा की क्या निंदा क्या प्रशंसा……… …? यह तो भूल में भूल है जो अपने भावों द्वारा इन नश्वर पौद्गलिक शरीर के लिये कल्पनायें कर सुखी और दुखी हुआ करता है। सुख का अनन्त खजाना तो अपने भीतर ही विद्यमान है लेकिन यह अज्ञान और मोह अपने का भान कहाँ होने देता। ···· अपराध!! वह तो प्रत्यक्ष था जिसका प्रायश्चित लेने मैं यहाँ आया। क्षणिक इन्द्रिय सुख के लिये हजारों प्राणियों की निर्मम हत्या। क्या यही माङ्गलीक विवाह का मंगलाचरण था ········ ?इसी से उद्घाटन था ··· ····· ? तो फिर जीवन को कहाँ तक गिराना होता यह तो स्पष्ट था।

राजमती सब कुछ सुन रही थी। उसे अपने प्रश्नों का उत्तर मिल रहा था।

क्षण आया·········। विवेक जागा ·······। भीतर वैराग्य भर रहा था और शरीर से मोह भी उठने लगा था।

दोनों हाथ जोड़े योगीश्वर के चरणों में गिर पड़ी ।

"तो प्रभु सच्चे मिलन की खोज में निकली मैं, मेरी आत्मा का भी कल्याण करो ।

× × ×

महान तपस्विनी आर्यिका राजमती माता श्वेत परिधान पहिने अपने कर्म बन्धन ढीली करती हुई तप में संलग्न है । और साध्वी राजमती अपने पति की पथानुगामिनी बन गयी ।



ब्रह्मचर्य की रक्षा

[१]

महाराजा जसवन्त सिंह—दिल्ली बादशाह के सबसे बड़े सिपहसालार थे, जिनके मुख पर तेज की आभा, बाहुओं में अपरिमित शक्ति, हृदय में दृढ़ प्रतिज्ञा, जो असहायों के पालक और शत्रुओं के संहारक सच्चे वीर ...... । जिसका प्रातः प्रभु चिन्तन में और संध्या गंगा मैदान की उन्मुक्त हवा में विचरण और प्रकृति के अगम्य रहस्य की खोज में बीतता था।

× × ×

आज राजकुमारी देखती नहीं थकी। ठगी सी रह गई और खो गयी उस अलौकिक स्वप्न में, जिसके चिन्तन में उसका यौवन पनप रहा था। आज उसके निखरते यौवन ने अँगडाई ली। जिसे देखने को उसकी अतृप्त आंखे मानों युगों से प्यासी थी। उस युगवीर पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन को ......।

परन्तु जाति–पाँति का व्यामोह!! धामिक संस्कारों की विभिन्नता!! भावनाओं की अनभिज्ञता!!! और अन्तःपुर की पराधीनता!!

मगर राजकुमारी अपनी अव्यक्त वेदना की मंत्रणा उन तक कैसे पहुचाये ? उसकी भी तो कुछ मर्यादायें थी, उसका

भी तो अपना कुछ महत्व था। पगली अवश्य हो रही थी' परन्तु संसार की आँखों में नहीं सिर्फ एक अलभ्य वस्तु की प्राप्ति के लिए ......।

...और कुछ देर तक तो पुष्पलेखा राजकुमारी के हृदय रहस्य से अनभिज्ञ ही रही। यद्यपि वह योग्य और कुशल थी। दासित्व का अनुभव भी पुराना था परन्तु आज जैसे वह 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' हो गयी हो। शायद इसलिये कि आज उसे जो कार्यभार दिया गया, सर्वथा नया और विस्मय-कारी था, जिसे उसकी कल्पना भी नहीं रहीं होगी।

'आखिर आज कुमारी कुछ कहने से पहले इतनी लम्बी भूमिका क्यों बना रही है ? इतना संकोच क्यों ...... ? क्या कोई गूढ रहस्य .. ...??" पुष्पलेखा सोच रही थी। और उसका नारी हृदय इस भूमिका की रुपरेखा खोजने में खो गयी। विचारने लगी 'यह भूमिका किसी प्रेमी हृदय का आह्वान तो नही कर रही। छि .. .. यह नहीं हो सकता .... मेरी विडम्बना। मन के संघर्ष को दबाये इस आशा से खड़ी रही कि राजकुमारी की आज्ञा हो।

और तभी राजकुमारी के युगल अधरों में स्पन्दन हुआ-नवपरिणित वाणी प्रस्फुटित हुई।

' तू मेरी अभिन्न सहेली है। हृदयगत भावनायें तुमसे अछूती नही रहती। मेरे दुख सुख की सहभागिनी... ......। मेरे श्रंगार के उपकरणों की उत्तरदायित्वनी ....!! तुम्हारा असीम अनुराग ....!! कुछ कहने को बाध्य हो रही हूँ सखि।"

" इन अधूरे शब्दों का तात्पर्य।" विनम्रता से दासी ने

निवेदन किया। मैं सिर्फ वेतन की दासी नहीं प्रेम की सेविका भी हूँ। स्पष्ट कहिये राजकुमारी ! शक्ति साध्य आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी। हमसे क्या छिपाओगी ......?

लेकिन सखी— हृदय बोलकर भी मुँह मूक है। मन चाह कर भी परिस्थितियाँ चाहने नहीं देती .... । आँखे अतृप्त मगर मर्यादाओं की दीवार उस पार देखने नहीं देतीं। भरे कण्ठ से राजकुमारी शायद कुछ और भी कहना चाह रही थी कि टोककर पुष्पलेखा ने कहा "परन्तु वह ईश्वर है कौन?

"जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंह!!" एक ही सांस में राजकुमारी ने कह ही डाला।

तो..........। पुष्पलेखा ने स्वयं भी कुछ कहना चाहा पर राजकुमारी उन्माद नेत्रो से बोली और शर्मिन्दा न करो। अभिलाषा का हनन न होने देना सहेली।

पुष्पलेखा उसकी अव्यक्त भाव - व्यंजना से अछूती नही रही, बोली—इतना छोटा कार्य फिर भावुकता की बाहुल्यता कसे ?

[२]

कौन........? महाराजा ने गम्भीर स्वर में कहा और फिर पुष्पलेखा को देखकर स्वाभाविक रुप मे बोले, आओ पुष्पलेखा। क्या कोई मेरे योग्य सेवा ?

'महाराज प्रणाम स्वीकार हो' दासी ने विनम्रता से कहा। .... कुछ क्षण रुककर कम्पित स्वर में बोली— "महाराज ! आज राजकुमारी ने आपको याद किया है। अभयदान सा पाकर वह पुनः बोली, "वह आपसे विवाह करना चाहती है।"

"मिलन ..... ! विवाह ......! बादशाह की बेटी राजकुमारी से। उसका अन्तस एक अपरिचित भय से सिहर उठा। संयत हो यकायक बोले, "जाओ कहना कि आज अस्वस्थ हैं कल अवश्य आयेंगे। दासी की भावना का सम्मान और लक्ष्य की सिद्धि का सदेश राजकुमारी को मिल गया।

दासी के वे खुले और बिना लगाम के शब्द मानों महा-राज के यौवन का परिहास कर रहे थे। लँगोटी का सच्चा महाराज जसवन्त जिस आदर्श ने उसे तेज दिया, बल दिया उसके अपहरण की एक बलवती माँग हो·· ......।

लेकिन एक ओर आदर्श और दूसरी ओर बादशाह की बेटी की याचकता। किसको ठुकराये ? हृदय में उफान आया और मन सोचने लगा "क्या भौतिक सुखों के लिये आदर्श की तिलान्जलि दे दें या तेज का अपहरण ही हो जाने दें। आदर्श भुला भूठे प्रेम का मोह········· नहीं। यह तो स्वाभिमान का घातक और मान को तिरस्कृत करने वाला होगा। मगर मिलने की स्वीकृति भी तो दे दी। इसका खण्डन कैसे हो सकेगा ? "धर्म – आन और मान"। स्त्री–हृदय प्रेम में जितना विह्वल हो सकता है, दोषारोपण करने में उतना कुटिल भी······ । न जाने इसके लिये बादशाह से क्या स्वाँग रचेगीं ? क्या विद्या फलायेगी ··· ·· ? इनके चरित्र की थाह लेना मानव शक्ति के परे है। और फिर उस दोषा-रोपण का भयंकर परिणाम – बादशाह के हृदय पर जमाये रंग के अनुसार होगा। इन्हीं संघर्षों में उलझे महाराज जसवन्त को एक विचार आया।

क्यों न कुछ दिनों के लिये जोधपुर चला जाऊँ। एक पंथ दो काज हो जायेगे। रानियों से सुखसमागम और समस्या

का निराकरण। परन्तु यह जानकर कि कल राज्य सभा में मेरी उपस्थिति अनिवार्य है महाराजा का मन विशाद से भर गया। लेकिन अज रात्रि की छुट्टी तो अपनी है।

[३]

इतने अल्प समय में दिल्ली से जोधपुर की दूरी······। प्रेम मिलन ····· । और सवेरे पुनः दिल्ली वापिस आना कितना असंभव कार्य था। परन्तु अपने प्राणनाथ की भावी मुसीबतों के निराकरण हेतु बडी रानी ने दिल्ली के बादशाह के यहां गुप्तरीति से ऐसा उपकरण का इन्तजाम रख छोड़ा था जो थोड़े ही समय में महाराज का मिलन रानियों से करा सके।

महाराज के अन्तस्तल को पढ़ यह सुअवसर देख सारथी एक कृतज्ञ दृष्टि से अभिवादन कर गद्गद् कण्ठ से बोला, 'स्वामी आपके इस सेवक में सामर्थ है कि आपका कार्य सम्भव करे। बस आपकी आज्ञा की देर है। उसी क्षण तक प्रतीक्षा है।"

"मगर ऐसा कौनसा उपकरण है ··· ·· ···· ? आशा-तीत हो महाराज बोले। "एक खास नागौरी बैलों की जोड़ी सहित सुन्दर रथ।" सारथा ने गर्व से कहा।

मगर यदि ········। महाराजा के इस अधूरे वाक्य को सुन सारथी बोला— महाराज! क्या यह मेरा तिरस्कार? सारथी का पद छोड़ दण्ड स्वीकार होगा।

एक क्षण में रथ हवा से बाते करने लगा। जिसकी चाल महाराजा के मन में आ रहे नये नये २ विचारों के वेग से द्विगुणित थी। मार्ग में हवा के तेज प्रवाह से गले में डला दुपट्टा रथ के बाहर उड़ जाने के कारण महाजा ने जब सारथी को रथ रोकने के लिये कहा तो सारथी का प्रत्युत्तर मिला

कि महाराज इतनी देर में तो रथ कई मील पार कर चुका है।

मध्यान्ह रात्रि तक रथ जाकर जोधपुर रुका। अपनी सफल यात्रा का श्रेय सारथी को देते हुए महाराजा ने रथ को छोटी महारानी के महल को ओर मोड़ने को कहा। सारथी ने स्वामिभक्ति का परिचय देते हुये कहा, "लेकिन यह तो मेरी नमक हरामी होगी बड़ी रानी के प्रति"। महाराज ने अज्ञात भाव से पूछा ."क्यों .....?

जिस बडी रानी की वलवती भावना ने आपको इतनी जल्दी अपने पाँस खींच लिया, उनको प्रथम दर्शन दें महाराज" सारथी के स्वर में दीनता भरी प्रार्थना थी। "ओह! तुम्हारी भावना का हनन भी कैसे कर सकता हूँ" अपलक नेत्रों से देख सारथी को उस ओर चलने का संकेत दिया।

महाराजा वड़ी महारानी के अन्त:पुर में आ पहुंचे। महारनी दर्शन कर मानों कृतार्थ हो गयी। महाराजा की आरती ली और फिर चरण बन्दना!! उत्सुक नेत्रों से मौन ही वह देखती ही रही।

महाराजा ने आतुरता से कहा, "प्रिये मौन क्यों......?' कँपते अधरों से बड़ी रानी ने निवेदन किया 'इतनी रात्रि में आने का कारण? "मगर इन अधरों पर भय के ये स्पन्दन कैसे? मैं मुसीबत नही समस्या लेकर यहाँ आया हूँ। तुमसे कहने और आपसे समाधान पाने। "परन्तु इतनी जल्दी क्यों ?" रानी ने पुन: प्रश्न किया। इसलिए कि सवेरे ही हमारी उपस्थिति वहाँ अनिवार्य है। और फिर वह कहानी कह डाली प्रेमलाप हुआ और इस अन्तहीन कहानी को अधूरी छोड़ वे

छोटी रानी के महल में जाकर उसका अभिवादन स्वीकार किया। और अपनी कथा समाप्त कर राज-कर्त्तव्य मे प्रेरित महाराजा ने विदाई के लिए क्षमा माँगी।

सारथी ने पुनः रथ बढाया और सूर्योदय होते महाराजा दिल्ली आ गये।

(४)

राजकुमारी ने प्रतीक्षा के इन क्षणों में कितना सुखानुभव किया होगा। कितने कल्पित सुनहले सपने सजोये होंगे। हृदय आतुर हो रहा होगा ... प्रेममिलन के लिये।

गोधूलि का समय। दासियों को महाराज का अन्त;पुर में आने की सूचना मिली। धन्य! उस यौवन और सौन्दर्य की मूर्तिमान प्रतिमा-राजकुमारी को, जिसको देखकर भी महाराजा का हृदय विचलित नहीं हुआ। वह अटल भाव से उसकी ओर देख रहे थे।

"आपका आमन्त्रण मैं नहीं टाल सका राजकुमारी" स्नेहासिक्त शब्दों से महाराजा ने कहा। "मैं खुदकिस्मत हूँ महाराजा! जो आपका दर्शन लाभ मिला" एक मधुर मुस्कान का प्रत्युत्तर मिला।

"मेरे लिए योग्य सेवा.......... और आज्ञा।" शब्दों में गंभीरता और वाणी में सरसता का आभास देते हुए महाराजा ने कहा।

"पाकर भी मैं खो चुकी हूँ अपनी निधि को।" एक अपराधिन की भाँति सलज्ज नेत्रों से राजकुमारी ने कहा।

"आखिर इन शब्दों का अर्थ —... ...। चिंतित से हो महाराजा ने उलाहना सा दिया।

"असीमित तेज! अरुण लालिमा!! झलकती कान्ति!! जो कल इस मुख मण्डल पर प्रतिभासित हो रही थी। जिस पर मैं मोहित थी। जिसके लिये मैं अपने आपको खो देना चाहती थी, वह कोई चुरा ले गया है महाराज। आने के इस कष्ट के लिये मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ।" रुँधे कण्ठ से प्रायश्चित के स्वर से राजकुमारी ने कहा।

"आप यदि अभयदान दें तो ....।" महाराजा ने कुछ कहना चाहा।

"ज्यादा तिरस्कार न कीजिए महाराज! पराजित का भाँति दवे स्वर में उसने कहा।

"तेज मनुष्य की अलौकिक निधि है। यह वह भौतिक द्रव्य नहीं जो किसी भी याचक की गिड़गिड़ाहट से रीझकर दान दी जा सके। इस पर तो किसी एक का ही अधिकार है। उसी का इस पर स्वामित्व ....। यदि क्षत्रिय वीर इस तरह अपना धर्म वेचते फिरें तो फिर ऐसे वीर बहादुर रत्न पैदा नहीं हो सकते जिनकी गौरव गाथा अपने इतिहास के पृष्ठों में देखते हैं। यही तो क्षत्रियों की आन है.......। यही उनके जीवन का सच्चा आदर्श और इसकी रक्षा उनका धर्म है।"

राजकुमारी की आंखों से प्रायश्चित के आंसू बह रहे थे। और महाराजा की आंखों से स्वाभिमान की अश्रुधारा। उन्हें रहा था कि उन्होंने अपने धर्म और आन की रक्षा कर अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य की रक्षा की है।

———

प्रणय-रेखायें

[१]

और ज्योति के पत्र का अंतिम वाक्य था," अपनी इन्द्रा से मेरा प्रणाम कहें।" इस प्रणाम में कितने गहरे तिरस्कार का संकेत सुनील को मिला, जिसकी उसने अपनी ज्योति से कभी अपेक्षा नहीं की थी। उसकी हँसी वीभत्स हो ज्योति की हृदयं वेदन बन गयी थी, लेकिन सुनील की निरपराध आँखें स्त्री के उसी रूप का अध्ययन कर सकी, जिसको वह देख पा रहा था। वह एक स्त्री के अन्तस्त: से विभिन्न पहलुओं की भूमिका से बिलकुल अनभिज्ञ था। उसने आँखे गडगडाकर पुन: उस पत्र पर एक दृष्टि डाली—

"मेरे अपने सुनील,

मेरे में वह ज्योति नहीं थी कि आपके जीवन पथ को आलोकित कर उसे सुलभ बनाती। मेरे तल में आकर आपने बहुत कुछ ढूढना चाहा लेकिन एम घोर अंधेरा और सूनापन ही शायद हाथ लगा। और फिर ज्योतिषी का वह ध्रुव सत्य तथा उससे जनित विश्वास ···· ········। इसके अलावा तुम्हारे अधूरे अरमानों को मैं कुचलना भी नहीं चाहती थी। मैं ही क्यों आपकी इच्छाओं की अवरोधक बनूं और कब तक बनी रहती? आखिर उस सत्य का साकार अपनी काललब्धि पा एक दिन होना ही है। तुम्हारी भावनाओं का आदर करते हुये मैं इस रूप से किसी दूसरे अस्तित्व में सिर्फ इसलिये खो जाना चाहती हूँ कि कुछ दिन बाद होने वाली

प्रक्रिया कल की क्रिया में परिणित हो जाये । अपनी इन्दा से मेरा प्रणाम कहें ।

आपके जीवन की एक
ज्योति—

पत्र को समाप्त कर अचेतन पत्थर की भांति पास पड़ी आराम कुर्सी पर लुढक गया । उसका अचेतन मन निमिष भर के लिये मानो एक अपरिचित भय से सिहर उठा हो । उसकी मिथ्या कल्पना साकार हो इतने भयंकर रूप में उसके सामने आयेगी, इसका उसे किंचित विश्वास नहीं था क्योंकि ज्योति के समर्पण में वह खो चुका था । ज्योति से उसे यह आशा नहीं थी कि वह एक ऐसे पथ का अनुशरण करेगी जिससे उनका जीवन घुट घुट कर घुले । वह संज्ञाहीन सा हो अपनी अव्यक्त मानसिक वेदना से मूक क्रन्दन की दशा में अपने अप-लक नेत्रों से पुन: उस पत्र की ओर एक हतप्रभ दृष्टि डाली जो उसके भावी जीवन को सूनेपन अँधेरे और अनन्त समस्याओं की परिधि में ढकेलने आया था ।

उसका चिन्तन पुनः तर्कनाओं में खो गया,"लेकिन ज्योति ने मेघों की मात्र गर्जना से अपने घड़े का पानी उडेलकर मुझे जो प्यासा रखा क्या यह उचित किया ? और यदि उसे मुझसे घृणा ही हो गयी थी, मेरे ही सहारे पर अविश्वास और मेरे प्रेम एवं स्नेह में मात्र विडम्बना ही दीख रही थी तो कम से कम इसके लिये उसे पहिले सावधान कर देना था ताकि मैं ऐसी शक्ति का अर्जन कर सकता जो विषम परिस्थितियों जटिल समस्याओं और कठोर संघर्षो से जूझने में समर्थ हो सुखानुभव कर सकता । अपनत्व की जिस पराकाष्ठा में आकर मैंने अपनी बात अपना समझकर अपने से कह दी । उसकी

इतनी बड़ी सजा जिसे मैं सारी उम्र भी पूरी न कर सकूं ज्योति की यह नादानी — कि ईश्वर की बात को स्वयं कार्यान्वित करना चाही।

उसके कानों में वे शब्द आ आकर टकराने लगे, वह मूल्यहीन रहस्य जो उसका पड़ौसी ज्योतिषी हमेशा कहा करता था। ज्योति के साथ अतीत के वे क्षण आज कितने निर्मम सिद्ध हो रहे जिन्हे वह हँसी की संज्ञा मानता रहा। आज उसके मन एवं मस्तिष्क को वे बुरी तरह उत्पीड़न दे, बुरी तरह झकझोर रहे थे।

× × ×

वे शब्द............!!! "ज्योति तेरे हाथ कितने कोमल हैं।" "लेकिन आपसे कम .. ..।" बातों की श्रृंखला आगे बढ़ी।

लेकिन मेरे इन निष्ठुर हाथों की रेखाओं में एक अभिशाप रेखांकित है।" सुनील असंयत सा हो एकाएक कह बैठा। और फिर हँसी के इस सम्भाषण में गम्भीरता का वातावरण छा गया।

"अभिशाप...........!!" ज्योति की आँखें न जाने क्या विचार कर डबडबा आयी। वह कहने लगी थी, "सच्चे स्नेह की प्रखर ज्योति में वह अलौकिक शक्ति है जिससे एक क्या अनन्त अभिशाप भस्म हो सकते हैं। लेकिन क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि वह अमंगल आखिर क्या है?"

"अज्ञात भविष्य की अपेक्षा वर्तमान जीवन की गतिविधियों में अपने को सजग बनाये रखना ज्यादा श्रेयकर है। मैं भविष्य की उन भ्रममूलक और आधारहीन तथ्यों को नहीं दुहराना चाहता जो हमारे बीच दीवार खड़ी करने में सहायक

हो।" सुनील ने ज्योति से कहा।

"लेकिन भूखे को आधा भोजन खिलाकर उसकी क्षुधा को और भी प्रज्वलित करना है। अधूरी बात की अपेक्षा यदि बात कही ही न जाती तो अच्छा था। इसमें तो मेरे अपनत्व की हँसी है। क्या अपनी ज्योति से इतना अपनत्व छीन लेना चाहते हो कि वह न तो अपने सुख दुख की बात पूछ सके और न ही कह सके। फिर यह छिपाव ··· ····!! " ज्योति ने अभ्यर्थना स्वर में कहा।

"नहीं ज्योति! जीवन यज्ञ में समर्पण आहुति जो हम लोग दे रहे हैं उसमें यदि छिपाव की बात रखनी होती तो शायद बात शुरू ही नहीं की जाती। देखो यह देख रही हो मेरे दाहिने हाथ की हथेली। और इसकी छोटी अँगुली के नीचे ये दो छोटी रेखायें जिन्हें पं० ओंकार नाथ ज्योतिषी ने प्रणय रेखायें बता इनका फल बताया मेरे इस जीवन में दो बार प्रणय – बन्धन······ ॥

× × ×

ज्योति का मन ऐसी स्थिति में कितना कसक मारकर चुप रह गया होगा। खून का कितना बड़ा घूँट पीकर रह गयी होगी। उसकी भाव भंगिमा निश्चय उस समय एक मूक भाषा कुछ कह रही होगी जिसे मैं सुन नहीं सका था। वह अनभिज्ञता आज अक्षम्य अपराध और प्रायश्चित के रूप में हमें जीवन भर इस कल्पित इन्द्रा के नाम पर रूलायेगी जो कि ज्योति को चिढ़ाने के लिये एक माध्यम मात्र थी। स्त्री की भावी सम्भावनाओं, आकांक्षाओं और स्वाभिमान को ठुकराना भी तो पाप है। मैंने उसके सुनहले स्वप्नों पर अमिट कालिख पोतकर उसे जो इस सदिग्धावस्था में जो रहने दिया। क्या

मेंरे लिये उसके प्रेम मूल्यांकन का यही पुरस्कार देना था ? कटु सत्य के झोंके पाकर वह क्रान्ति की आग धधक उठी।

ज्योति का मन उस नारी का मन होगा जिसके हृदय में यह बात अच्छी तरह बैठ गयी होगी कि अब मेरे इष्ट सहवास की काल लब्धि थोड़ी रह गयी है। उसका मन कुण्ठा से भर गया होगा जो उसे दूसरे किसी रूप में खो जाने की प्रेरणा दे रहा होगा।

(२)

समय की अनवरत गति के साथ सुनील जीवन की इस विडम्वना से बिलकुल निराश होता जा रहा था। उसकी सारी क्रियायें यंत्रवत चल रहीं थी जिनमें न नयापन और न ही चेतना। जीवन के वह जिन पक्षों से गुजर रहा था मानों वह बिलकुल ऊब चुका हो। उसके जीवन के सारे आदर्श उसे धिक्कार कर कह रहे थे कि तुम नारी के हृदय को न छू सके। उसके स्त्रीत्व की रक्षा न कर सके उसका पुरुषार्थ जीवन के इस कृत्य पर अट्टाहास कर रहा था। हृदयहीन सा हो वह जीवन की जिन यथार्थताओं और शुष्कताओं से जूझ रहा था, लगता है कि वह उनसे परास्त होने ही वाला है। उसके एकाकी और सूनेपन ने जीवन की सारी क्षमताओं और शक्तियों को जर्जरित कर दिया था। उसकी कल्पित इन्द्रा उसके अव-शेष जीवन को अभिशाप बन बैठी।

यह दो वर्ष का समय दो जिन्दगियों की भांति गुजरे और इसी थोड़े अन्तराल में वह ५५ वर्ष का बुड्ढा सा नजर आने लगा। जीवन से उसे कोई आकर्षण नही रह गया था। शायद वह जी नहीं रहा था, जीने की औपचारिकता पूर्ण कर रहा था। वास्तव में मनुष्य दुःख से उतना दुखी नहीं होता जितना दुखानुभूति से उन ही अनुभूतियों की श्रंखला कड़ा इतनी

लम्बी हो चुकी थीं कि समेटकर उन्हें अपने में नहीं रख पा रहा था। और उसके दुखों की अनुभुतियों की पराकाष्ठा उसे एक महानगर के अस्पताल के जनरल वार्ड तक घसीट कर ले गयी।

(३)

दुर्बल मन की दुर्बल भावनाओं से ग्रसित उनका रोगाक्रान्त शरीर जनरल वार्ड के बिस्तर-१ पर पड़ा उन क्षणों की प्रतीक्षा में था जो उसे लेने आ रहें थे। पास आने वाली परिचायिकाओं से वह काफी घनिष्ट सा हो गया था। जीवन की अपनी लम्बी लेकिन अधूरी कहानी किसे सुनाकर दुख को हल्का करे वह नहीं जान पा रहा था कि भीतर की कौनसी प्रेरणा दवाईयों की डोज और इण्जेक्शनों की चुभन सहने के लिये प्रेरित कर रही है; शायद ईश्वर की बात वह अपने आप पूरी नहीं करना चाहता रहा होगा। वह अपने अधमरे आदर्शों को निष्प्राण नहीं करना चाह रहा था।

लटकी तख्ती पर रिपोर्ट लिखने सेवा सुश्रुषा की औपचारिकता पूरी करने आज जो परिचायिका आयी उसे देख सुनील का मन कहने लगा— चेहरा तो पूर्व परिचित सा लगता है। लेकिन विवेकशील, बुद्धि ने झकझोर कर सम्बोधिन किया, "खोकर क्या ढूढ़ना? क्यों भटकना ·· ?

दूसरे दिन पुनः सुनील ने उसकी वही चुस्त और सफेद ड्रेस के साथ उसे सिर से पैर तक देखा। जिसकी चाल में कार्य के उत्तरदायित्व का वेग, हाथों में स्फूर्ति और आँखों में सेवाभाव की प्रखर ज्योति। उसे इतनी फुर्सत कहां कि प्रत्येक रोगी के व्यक्तिगत जीवन का परिचय ले सके। मानो वह सारे संसार भुला अपने से बेसुध सेवा के भावों और कार्यो में एक

सा हो अपना कर्त्तव्य पालन कर रही हो। सुनील के हृदय में फिर भी एक अन्तर्द्वन्द हुआ —"शायद ज्योति की प्रतिमूर्ति सी लगती है !! लेकिन नहीं ... !!!" मेरे जीवन मे अलग हो उसने अपनी जिस कठोरता का परिचय दिया उससे यह अपेक्षा रक्खें कि वह इतनी कोमल हृदय की नारी हो सच्चा सेवा के इस पथ को अपनायेगी ?" फिर भी मन की प्रतिक्रिया शान्त नहीं हुई, विचारों में देखभाल चलता ही रहा क्योंकि उससे, परिचायिका के रुप में सेवा सुश्रुषा के साथ जो अपनत्व पा रहा था उससे उसका हृदय कुछ राहता प्राप्त कर लेता था,

आखिर एकदिन परिचयिका का स्नेह सुनील से यों ही कह बैठा"क्या आपके कोई घनिष्ठ सम्बन्धी या परिवार के सदस्य नहीं जो ऐसी स्थिति में आपका सहारा हो आपको सांत्वना दे सके"

सुनील के मौन उत्तर में आँखों से झलकते आंसू जो उसकी जीवन–कहानी पर व्यंग्य कर उस पर हंस रहे थे। वह अपना अतीत किन शब्दों में कहता, लेकिन मुँह से आह निकल ही गयी, "कि एक विश्वास ने मेरे सुखमय जीवन पर कठोर प्रहार कर मेरे अटूट सम्बन्ध को धोखे में परिणित कर, मेरा अधिकार मुझसे इतना निर्मम प्रतिकार लेना चाहा कि मुझे आश्रयहीन बना दिया। एक हँसी की कल्पना सत्यसिद्ध हो इतने भयंकर प्रायश्चित रुप में आयी कि मुझे इस दुनियाँ में अकेला और सूना रहने के लिए बाध्य कर इतना असक्त बना दिया कि आज मैं इस वार्ड की चहार दीवारो के अन्दर समय भी कठोरता के साथ कठोर बना पड़ा हुआ हूँ"।

सुनील के इन अधूरे और अर्थहीन वाक्यों में जीवन रहस्य का पूरा २ अर्थ भरा पड़ा था। और इसके बाद सुनील ने

कृतज्ञता भरी निगाहों से परिचयिका का नाम सिर्फ इसलिए जानना चाहा ताकि वह उन नारी की पवित्र साधना जिसमें सेवा का अनन्त गौरव गर्हित था को याद कर स्वंय कुछ धन्यता प्राप्त कर सकें।

× × × × ×

सुनील के उन अधूरे वाक्यों को सुन, परिचयिका के नेत्र पटल पर अतीत के सारे चित्र एक बार पुनः खिच गये। जिन के भावी सुखमय जीवन के लिए उसने यह रुप लिया था आज उन्हीं सुनील के भविष्य को प्रत्यक्ष देख वह आत्म–ग्लानि से भर गयी। एक अज्ञात और झूठे विश्वास के पीछे मैंने सच्चे स्वरुप को कितना ठुकराया उपेक्षा भाव की और अलगांव की कितनी सीमा लांघी, यह सोच परिचयिका किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी हो उसी समय वार्ड से बाहर निकल गयी।

अब उसकी सासें किन विश्वासों और शब्दों से अपनी त्यागी वस्तु को पाने की अभ्यर्थना करे। संसार की निगाह में जिसने एक बार अपना समर्पण और अपनत्व वापिस ले लिया अब वह फिर प्रवंचना करे कि वह अमुक चीज पुनः मेरे पास वापिस आ जाय कहाँतक संगत युक्त है ?...लेकिन उस अमुक को जिस चिर शुभांकाक्षा के लिए नेह मोह, और भौतिक शरीर का सम्पर्क छोड़ा था; जीवन के जिस व्यवधान से मुक्ति पाने के लिए अपने सुख का हनन कर, उनके दृष्टिकोण का आदर कर अपने को मोड़ा था, उसे इस दुनियाँ को कैसे समझती !

परन्तु अपने कुछ वर्षों की पवित्र साधना से अर्जित शक्ति पाकर उसके अन्दर साहस हुआ और हृदय बोला "मैं अवश्य जाकर अपने सुनील से जीवन भिक्षा की प्रार्थना कर कहूँगा कि जिन हेतुओं और धन्यता के लिए मैंने अपना सब कुछ छोड़ा था आज उन्हीं हेतुओं ही के लिए मैं तुम्हारे गोद में आ अपने

प्रेम समर्पण को तुम्हारे पुरुषार्थ के अनन्त विस्तार में खो देना चाहता हूँ । " सोचने लगी—" आत्मा की सच्ची आवाज ठुकराई नहीं जायेगी" ।

× × × × ×

परिचायिका रूप में उस नारी का मस्तिक और आँखें सुनील के चरणों में अपने अपराध के क्षमादान हेतु झुकीं थीं । जो सिसक रही थी । और सुनील कृतज्ञता से भरा अपनी खोई ज्योति के साथ अपने को हल्का और स्वस्थ्य अनुभव कर रहा था ।

सुनील कह रहा था "ज्योति तेरे तल में आकर मैंने जो प्रकाश पाया और उसकी आभा में जो प्रखटता पायी, जो तेज पाया वह हम लोगों के अनशेष जीवन को प्रकाशित करता रहेगा । आज में पुनः तुमसे प्रणय–बन्धन कर प्रकृति की साक्षी में इस आकाश की उपस्थिति में अपना रहा हूँ और यह प्रयास करूँगा कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक तुम्हारे अपनत्व और समर्पण को चिरन्तन बनाये रक्खूँ ।

ज्योति की आंखों में मिलन के इन क्षणों में सुखावास के अश्रु और मौन वाणि में अपने ही सुनील का नये पति रूप में अभिनन्दन और अपनत्व का समर्पण था ।

प्रतिशोधी की पराजय

[१]

दिवस के अवसान की स्वर्णिम लालिमा मानसरोवर की चचल लहरों के साथ मिलकर प्रकृति के सौंदर्य की ओर मुखरित कर रही थी। प्रकृति की इस अलौकिकता में प्राणों के हर प्रदेश आनन्द की स्फुरणा बन रहे थे। चारों ओर शान्त नीरव और स्तब्ध वातावरण .... । प्रकृति के इस खुले और विस्तृत प्राङ्गण के बीचो—बींच मानसरोवर का कल कल प्रवाह ही उस नीरवता को भंग कर रहा था। इसके कूल पर बैठा क्षत्रिय वीर नरेश प्रह्लाद का सुत युवराज पवनञ्जय युद्ध की गहन गुत्थियों पर चिन्तन कर रहा था। सोच रहा था कि न्याय के लिए लड़ रहे इस धर्म-युद्ध में अब और नर संहार इसके नाम पर कलंक का टीका होगा। एक ओर जीवन की आहुतियाँ .. .. । दूसरी ओर क्षत्रिय—धर्म का निर्वाह ......!! कौन गौण ...कौन प्रमुख !! एकाएक विचारो की यह शृङ्खला एक विशेष दृश्य के चीत्कार ने भंग कर दी। चकवी के अपलक और करुण नेत्र दुष्ट बाज पर तब तक अडे रहे जब तक वह चकवा को ले अदृश्य न हो गया। एक मादा पक्षी में भी भावनाओं का कितना उद्रेक था पति—वियोग की कितनी पीड़ा समायी थी आवाज में कितना क्रन्दनमय चीत्कार था, यह देख पवनजंय को अपनी

प्यारी अंजना की याद रोके न रुकी। क्योंकि साख का यह तीर उसके कठोर हृदय को वेधने के लिए काफी था जिसने प्रतिशोध की भावनासे रानी अंजना से विमुख हो अपना उत्तरदायित्व एकदम भुला दिया था। चकवी के आंसुओं ने युवराज के हृदय को गीला कर मानो पत्थर को मोम बना दिया था। पवनजंय का मन आत्मग्लानि से भर चुका था क्योंकि वे एक ऐसी नारी को विस्मृति कर चुके थे जो २२ वर्ष से अपने पति से तिरस्कृत रहने पर भी अपने को सौभाग्य शालिनी मानती रही। आज चकवी की इस वियोग-व्यथा से उत्पीड़ित हो युवराज का प्रतिशोधी मन बिलख २ कर रोने लगा। उसकी शालीनता और पौरुषता ने वह गति पैदा कर दी जो प्रायश्चित की धड़कनों के रूप में उठ रही थी। पुन: सोचने लगा "जब एक पक्षी में इतनी संवेदन शीलता अपनत्व की इतनी दृढ आस्था और वियोग का इतना गहरा सदमा है तो क्या प्रिय अंजना के हृदय में विरहाग्नि की एक चिन-गारी भी न होगी ! उन चिनगारियों की उष्णता से मुझे तो न जाने कब तक भस्म हो जाना चाहिए था। मगर नहीं उनके हृदय से ठण्ढी चिनगारियां ही निस्तृत हो रही होगी जो मुझे आत्मसात ही करेगीं। दोनों तरफ से यदि प्रतिशोध का संघर्ष होता तभी उससे द्वेष और पाप की ज्वालायें निकलती, लेकिन उनमें तो क्षमा और सहनशीलता के अमृत किरणें ही फूट रही होगी जो प्रतीक्षा में सहस्त्र गुणी प्रतिभा ओढकर मिलन की प्यासी होगी।

अतीत की वे स्मृतियाँ········ · !! युवराज की आँखो के सामने पुन: एक बार तैर गयी। विस्मृति यदि पुन: जगने लगी उस क्षत्रिय वीर के हृदय में "सखियों के हास्य वार्तालाप

में लज्जा में दबी यदि कुमारी अंजना मौन थी तो उसका इतना बड़ा दण्ड प्रतिरोध की इतनी कड़वी भावनाएँ और इतनी मजबूरियों का दास उसे बनाया गया। अबला के कोमल हृदय पर पुरुष की इतनी कठोरता ! इतना निष्ठुरपना ··! क्या इसी में क्षत्रित्व था। वह तो वीराङ्गना है अतः मेरे पापों को पचा गयी लेकिन मैं अपना पाप स्वयं कैसे गलाऊ। इन शत्रुओ पर अपने बाहुबलो एवं शस्त्रो से विजय प्राप्त कर लूँगा, परन्तु प्यारी दुखियाँ का हृदय किस अमोंघ हथियार से जीतूँ। प्रेम के इस युद्ध में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। प्रायश्चित के किन शब्दों को लेकर मैं खोये प्रेम के लिए अभ्यर्थना करु !

[२]

युवराज का हृदय परिवर्तन पवनजंय को युद्धस्थल से रानी अंजना के रनिवास की ओर ले गया। युवराज पवनजंय आज एक अभ्यागत के रूप में ही रनिवास के मुख्य द्वार पर विमान रोक कर खड़ा हो गया। रात्री का सन्नाटा—जब संसार सुखनिद्रा में खोया था, पवनज्जय की आँखे प्रिया-दशन को आतुर हो रही थी।

रानी के लिये पतिआगमन का शुभ संदेश-मानों उसके जीवन चेतना की मंत्रणा थी। भावनाओं की विह्वलता में आ वह किकत्तर्व्य विमूढ़ सी हो क्षण भर ठिठक कर रह गई। शीघ्र ही सुवर्णथाल में रत्नों के माँगलिक दीप तैयार कर अपने प्रभु के स्वागत में आरती उतारने के लिये दौड़ पड़ी। क्षण भर के लिये माथे का सुहाग पुनः हँसने लगा।

"प्रभु किस चिन्तन में······? किस प्रतिक्षा में ·····?? मौन खड़े हैं। मेरे पापो को प्रक्षालने हेतु आपके दो शब्द ही काफी होगे। आज इन दीपकों के माध्यम से स्वंय को जीवन ज्योति जगाने दासी आपके चरणों तक आ पायी है।" अंजना ने आरती उतारने के बाद प्रकम्पित स्वरों में कहा।

"प्रिये! मैं और अधिक लज्जित होने नहीं वल्कि अपने झूठे स्वाभिमान और खोखले प्रतिशोधो को गलाने यहां तक आने का साहस कर पाया हूँ। मुझे सुबह का भूला शाम को घर वापिस आया समझ तुम अपने हृदय में वही स्थान बनाओ जो एक नारी अपने पति के लिए करती है।" अभ्यर्थना के स्वर में पवनजय ने कहा।

"यह क्या कह रहे हैं प्रभु। वह क्षत्रिय युवराज जिसके स्वभिमान के सामने लंकपति की शक्ति कुंठित हो रही है, इस दासी से जो २२ वर्ष पहिले ही चरणों में आत्म समर्पण कर चुकी है अभ्यर्थना के स्वर में बोल रहे हैं। तुम्हारी शौर्यता का सहस्त्रांश पा जो अबला वीराङ्गना कहलाने योग्य हो गयी उसके शोर्य और यश प्रतिभा का अंकन कौन सा मापदण्ड कर सकता है। आज मैं कितनी धन्य हूँ, जो जीवन की निधि पा अपने को कृतार्थ कर पायी हूँ। मैं कितनी सौभाग्य शालिनी हूँ। जो प्रभु के चरणों की रज माथे पर ले जाने का सौभाग्य पा रही हूँ। वह आपका प्रतिशोध नहीं मेरे अशुभ कर्मो का ज्वार भाटा था जो अब शान्त हो चुका है।" अजना ने गम्भीर गिरा में कहा।

उसी रात्रि के पिछले पहर में युद्धस्थल को वापिस जाते हुए पवनजय से अंजना ने स्नेह और आग्रह पूर्वक माथे पर विजय कामना का तिलक लगाकर कहाँ "लेकिन प्रभु प्रथम मिलन

का प्रमाण भी तो दासी के पास कुछ होना चाहिए।

कुछ ही क्षणों में रनिवास में वही सूनापन अंजना के लिए वही एकान्त फिर भी पति की मुख मुद्रित अंगूठी को ले मानो उसने अक्षय निधि पा ली हो। वह पूर्ण सुखी और सन्तुष्ट थी।

अंजना पवनजय का यह प्रथम प्रेम-मिलन, यह एकान्त सहवास जगत की दृष्टि में भले ही अज्ञात हो पर दो हृदयों के इस प्रवाह ने जिस दिव्यता की सृष्टि की वह अपने माँ और पिता का नाम अमर किये रहेगा।

(३)

इधर अजना के गर्भस्थ शिशु का विकाश और उधर पवन-जंय के साथ लंकपति की युद्ध विभीषिका दोनों एक साथ बढ़ने लगी। रानी अंजना का रहस्य कब तक छिपा रहता आखिर एक दिन वह अपवाद के रूप में जगत के सामने आ ही गया प्रजाजन तथा पुरजनों में टीका टिप्पणी होने लगी। परित्यक्ता के गर्भ रहना—क्षत्रिय वंश के लिए कलंक है, इस उच्चकुल में यह दाग—शर्म की बात है। इन भर्त्सनाओं के बोझ से दबे अंजना के सास श्वसुर ने अंजना को गृहत्याग की आज्ञा दे दी।

अंजना के भाग्य में अभी समय के और थपेड़े खाने थे। वह निर्दोष अंजना अपने मुँह से क्या कहती, और फिर किस २ से कहती। अपवाद के चिथड़ो में वह अपने सतीत्व को न ढक सकी ससुराल गृह से निष्कासिक अबला, अंजना अपनी मां के घर भी उपेक्षित की गई परित्यक्ता को कौन शरण दे सकता है। आखिर स्त्रीत्व की रक्षा के लिए गहन वन के अतिरिक्त उसे सहारा भी क्या था? दुखियारी को अपनी उतनी चिन्ता

नहीं थी जितनी अपने पनप रहे दिव्य अंश की। प्रभु मिलन के लिए भटकती अंजना के लिए, उन बीहड़ जंगलों में एक२ डग मजबूरी के डग थे, जिनके द्वारा अपनी अज्ञात मंजिल तय कर रही थी।

वह दिन भी आया जब कीचड़ में कमल उत्पन्न हो गया और कांटों में फूल खिल गये। मुनि के सानिध्य में एक शैल गुफा में अंजना ने सूर्य के प्रताप से भी बढ़कर यशस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। कुछ कालान्तर बाद उस पुत्र हनुमान के पुण्य सौभाग्य से उसी गुफा के पास अंजना को मामा प्रतिसूरज से भेंट हो गयी जो प्यारी बेटी अंजना को अपने घर विमान में बैठा कर ले गया।

× × × × ×

इधर युवराजय पवनजय विजय पताका फहराता हुआ अपनी नगरी आदित्पुर पहुँचा। पूज्य पिता से विजय श्री का प्रसाद लेने ज्यों ही उनके पास पहुँचा, उसे वस्तुस्थिति का पता चल गया और फिर हार्दिक दुख से अभिभूत हो प्यारी अंजना की खोज में जंगलों की ओर निकल पड़ा। भाग्य की अमिट रेखा को पोछने में मनुष्य का पुरूपार्थ और अनन्त चेष्टाये नि:चेष्ट होकर रह जाती हैं। गद्दी पर बैठने वाला युवराज कंटको और बीहड़ जंगलों के मार्गों से भटकता हुआ वनो के दुर्गम्य प्रदेशों को खोजने लगा।

जब प्रतिसूरज को पवनजंय की इस नयी करुण कहानी का पता चला तो यह भी उन्हें खोजने तथा प्यारी अजंना का पता देने घर से निकल पड़ा। सर्वप्रथम आदितपुर जाकर पवन की मां केतुमती और नरेश प्रह्लाद से अपना शुभ संदेश कह सुनाया। प्रतिवेदन में आगे प्रतिसूरज ने सिर्फ इतना ही

कहा कि पति-दर्शनाभिलाषिणी अंजना बेटी सिर्फ इसलिए अपने कलंक में सांसे भर रही है ताकि पति के साक्षात्कार में में जगत को वह अपने सतीत्व का प्रमाण दे सके। पवन की माँ की और पूज्य पिता अंजना बहू की इस व्यथा से अन्तर-वेधित हो प्रतिसूरज के साथ युवराज पवनन्जय को खोजने निकल पड़े।

× × × × ×

पुर्नमिलन की शुभ घड़ियाँ ······!!!

जब अपनी प्यारी अजना के लिये पागल युवराज पवनन्जय ने प्रतिसूरज के द्वारा उसका शुभ समाचार सुना तो उसका हतप्रभ मुखमण्डल उसकी निर्जीव चेतना पुन: हर्षातिरेक में कान्तियुक्त दीखने लगी।

प्रायश्चित ले रहे पवनन्जय के अशक्त अपराधिनों की भाँति गिड़गिड़ा कर कहा, 'आयुष्मान पवन! उठो मेरी अक्षम्य अज्ञात भूल को क्षमा कर बहू अंजना के साथ सकुशल नगरी में पदार्पण करो। तुम्हें देखकर आदितपुर का कण कण अह्लाद से झूम उठेगा।

हनूद्वीप जाकर अंजना के सास श्वसुर और माता पिता ने बेटी अजना को गले लगाकर प्रायश्चित के आंसुओं से उसका मिथ्या कलंक धो डाला। सती अंजना की मुख मुद्रित रत्न जडित उस अंगूठी को देखकर संसार ने उसे साध्वी और सतीत्व की अधिकारिणी ठहरा उसके माथे पर सौभाग्य का सुहाग और गहरा लगा दिया।

———

रूप की सजा स्वरूप की प्राप्ति

(१)

आज दासियों के विक्रय-बाजार में एक अलौकिक रूपसि देवि कन्या का रूप और सुकोमल बदना बालिका का दुर्भाग्य से ठुकराया जीवन बिकने आया। जिसकी दृष्टि में राजकन्या जैसा व्यक्तित्व मुस्करा रहा था और तुतली वाणी में उच्चकुल का गाम्भीर्य गर्वित था, ऐसी उस हतभागिनी कौमार्य एक सौदा की भांति बिकने आया था। दर्शकों की अनन्त आंखे उस कुमारी पर गढ़ी थी। लेकिन उस कन्या की आंखें कर्मों के द्वारा खिलाये जा रहे खेल को ही देख रही थीं। वह स्तब्ध खड़ी बिक्रेता मालिक के इशारों पर कभी बैठती कभी उठती और कभी बातें भी कर लेती। उसकी ये यंत्रवत क्रियायें लेने वाले सौदागरों के लिये हो जाया करतीं थीं।

विक्रेता कह रहा था, "आर्यश्रेष्ठ! यह साधरण कोई गर्भदासी की लड़की नहीं। इसका तो पुण्य ही ऊँचा है जो हमारे सरदार को अंग और मगध के सीमान्त गघन जगल में हाथ लग गई थी अन्यथा इस राजकुल कन्या का वहां कौन आश्रयदाता था? और बेचारी दो माह में ही कितनी सूख गई, कमल सा चेहरा कितना मुरझा गया? मुझ गरीब में इता सामर्थ्य कहाँ कि इसके रूप को सँवार राजसी वस्त्राभूषण पहना सकता। यह किसी श्रीसम्पन्न ऊँचे कुल की शोभा बढ़ाये ऐसा सोचकर आपके महानगर कौशाम्बी मे ले आया हूँ। हमारी झोपड़ी इस भाग्यशालिनी के अनुरूप नही थी। जैसी

ऊँची कोख ने इसे जन्म दिया वैसे राजघराने में यह श्रीवृद्धि को प्राप्त हो इसे भावना से मैं इसे बेचने आया हूँ" ।

सेठ धनावह की उत्सुकता जितनी बढ़ी मन का अन्तर्द्वन्द उतना ही तीव्रतर होता गया । उसकी दूरदर्शिता पाने की चाह को अनचाहा कर रही थी । सोच रहा था, "आज की यह बच्ची कल किशोरी होगी और कल की किशोरी परसों जब तरुणी होगी तो फिर सेठानी के शंकालु हृदय में सोतिया वहम का भूत सवार हो सकता है । जैसा जीवन फिर नरक हो, घर में कलह और कलुषता का वातावरण पैदा हो जायगा । आज का सुख कल के सताप में बदल जायगा । ··· ······लेकिन इसकी निश्छल आँखों में जो प्रेम और ममता के आंसू दिख रहे हैं वे मौन होते हुए भी अपने भीतर घने रहस्यों को छिपाये हुए हैं । फूल सी कोमल यह बालिका भला मेरी सेठानी का क्या बिगाड़ेगी" विचारों के इस थपेड़ों से सेठ धनावह नहीं सोच पा रहा था कि इस निराश्रय बालिका को ले लूँ या आगे बढ़ूँ ।

विक्रेता सेठ जी की मनःस्थिति की थाह लेते हुए पुनः कहने लगा, "पाँच कम चालीस स्वर्ण मुद्रायें ही दे देना । लेकिन आर्यभद्र । इतना अवश्य कहता हूँ कि ऐसा सौदा न कभी इस महानगर में आवेगा और ना ही श्रावस्ती के बाजारों में ।

कुछ देर तक आर्य श्रेष्ठ धनावह चिन्तना में खोये सेठानी जी की मनोवृत्ति और उसके स्त्री हृदय की गहराई को सोचते रहे । लेकिन अपने मित्र जयसेन के अनुग्रह पर स्वीकृति दे दी ।

समय के साथ किशोरी चन्दना का रूप और सौदर्य निखरने लगा । कौसेयवसना, अत्यन्त सुन्दर चन्दना जिसके पैरों

में नुपूर, हाथों में रत्नजड़ित कंकण ग्रौर कटि में मेखला हमेशा उसकी रूप सुगंधि को बिखेरती रहती थी। सिर कुतंलीन ग्रौर मुक्त ······ ठीक उसकी रूप में ढला था। ग्रब श्रेष्ठिवर धनावह उसके माता पिता थे जिनके पास उसे एक चिरशान्ति ग्रौर ममता की पुचकार मिल जाती थी। उसके सरल स्वभाव में सभी के लिए प्रेम ग्रौर विश्वास झलकता था। सभी की ग्राज्ञाग्रों की शिरोधारिणी ग्रौर ग्रपने पूरे उत्तरदायित्वों को निवाहने वाली चन्दना, इसके बावजूद सेठानी की स्नेह-भाजन न हो सकी। उसका सौंदर्य सेठानी के लिए विष घोल रहा था।

× × + +

"बेटी चन्दना······" ग्रार्य धनावह के शब्दों को सुन प्रमुदित मन चन्दना बाहर ग्रायी। रूप भी जिसके साथ मुस्कराता रहता था ऐसी मंद मुस्कान से चन्दना ग्रार्य श्रेष्ठि के पास ग्राकर खड़ी हो गयी।

गर्मी के ग्राताप से सेठ जी के मुँह पर स्वेद कण झलक रहे थे। पैर तप्त धूलि से धूसरित थे सेठ जी कुछ कहें इसके पहिले ही चन्दना ग्रन्दर गयी ग्रौर ठण्डे पानी की झारी भर कर ले ग्रायी।

बेटी तू क्यों परेशान हो रही, ग्रन्य दासियाँ कहाँ है? पितृ-स्नेह ग्रौर ममता में सने स्वर गूँजे।

ग्रपने पूज्य ग्रौर ग्रार्यश्रेष्ठि धनावह के पैरों को चन्दना धोने लगी। ग्रपनत्व की भावना से भर वह इसी बीच वह श्रेष्ठिवर से कह बैठी ग्रार्य! मुझे भी ग्रन्य दासियों की भाँति सेवा का कार्य निर्धारित कर दें जो घर की व्यवस्था को सरल बना माँ श्री के लिए यह कहने का बहाना न होने दें कि यह ग्रन्य दासियों की भाति काम न करके मालकिन होती जा

रही है" ।

"अच्छा बेटी भीतर जा और आराम कर ...."

एक प्रसन्न मुद्रा में खिलखिला कर हँस पड़े ।

भीतर सेज पर पड़ी अर्धनिद्रा में सेठानी ने चन्दना के इन शब्दों को सुन लिया और प्रतिहिंसा की भावना से वह मन ही मन झुंझला उठी, "पापिनी उसी पत्तल में खाकर छेद कर रही है । सेठ जी का इस विष भरे कनकहार पर इतन लगाव ?" सेठानी के अन्दर का पशुत्व जाग उठा । खारखायी सेठानी को एक जबरदस्त बहाना मिल गया । और स्त्री का वह वीभत्स रूप उभरने लगा जो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की दुर्गन्ध से पनप रहा था ।

× × × × ×

स्थूल सेठानी को इससे अच्छा और मौका कब मिलता जब सेठ जी नगर से बाहर कुछ लम्बे समय के लिए व्यापार के निमित्त गये थे । उसकी बाज-दृष्टि चन्दना का गला दबाने के लिए हमेशा आतुरित रहती थी ।

आज चन्दना एक अपराधिनी की भाँति काँपती स्तब्ध खड़ी थी और प्रोढ़ा सेठानी की कर्कश शब्दों में यह कठोर आज्ञा हो रही थी, "दासी विमोहिनी ! कल इस कलंकनी के घुघँराले बाल कैंची से कट जाना चाहिए । रूप की खान और अपने को सौन्दर्य की स्वाभिमानिनी समझने वाली इस गंवर्णी के सारे राजसी वस्त्राभूषण और रत्नजड़ित अलंकार उतर जाना चाहिए । और फिर एक मोटा टाट पहना कर हाथ और पैरों को भारी लौह साँकलों से जकड़ कर नीचे वाले तहखाने में डाल आना" ।

"जो आज्ञा हो मालकिन ! इस कलमुँही का दिमाग ऐसे ही दुरस्त होगा हम लोगों को भी नोचा समझने वाला इस सर्पणी का फन ऐसे ही कुचला जायगा" । हाँ में हाँ भरते

दासी विमोहिनी ने कहा ।

"और देख, खाने को कुछ न देना । एक दिन कोदों की कच्ची कुदई ही दी जाया करेगी । जिसने दूध पिलाया उसी को डसने वाली यह विद्रूपणी है । अब देखता हूँ कौन तहखाने से निकालता है । विष की पुड़िया इस डंकिनी का नाम जिसने चन्दना! चन्दना !! रक्खा है उसे भी । क्रोध में पागल उन्मत्तता से भरी सेठानी फुसफुसा रही थी ।

चन्दना की कठोर बन्धन की यह आज्ञा मानो आर्शीवाद थी । जैसे कोई अक्षम्य अपराध की सजा उसे भुगतनी हो ऐसे करुण मन से उसने आह तक नहीं किया । और फिर दुष्टता के कर्कश स्वरों में करुणा की कँपती आवाज दब ही जाती है । बलि के बकरे की भाँति मौन होते हुए भी वस कांप रही था । और उसका रूप उस पर अट्टहास कर रहा था । प्रभु स्मरण के अलावा उसके पास कोई हथियार शेप नहीं रहा था ! चिल्लाती भी तो चिल्लहाट चहार दीवारों को चीर कर कैसे बाहर जा सकती थी । वहीं उसको मुँह मसक दिया जाता । उसे मानो अपराध स्वीकार था और वह बन्धनों में जकड़ी तहखाने के अन्दर डाल दी गयी ।

चन्दना ममता भावों से पूर्वकृत पापकर्मों का फल भोगने लगी सोच रही थी, "मैंने सेठानी अम्मा के प्रतिकूल एक कदम भी नहीं रक्खा । हमेशा उनकी आज्ञा एक मातृ स्नेह के रूप में मानी । लेकिन जो होना होता है निमित्त भी वैसे संयोग पाकर मिलने लगत हैं । इससे मैं अपराधिनी नहीं । हां मेरा रुप अवश्य अपराधी है और यह सजा मुझे नहीं दी जा रही मेरे रूप को दी जा रही है ! मैं क्यों अपने अन्दर अपराधिनी की हीन कुंठाओं को जगह दूँ और अब संक्लेषित एवं खिन्न परिणाम करुं आखिर आज के भाव और परिणाम कल कर्मोदय

के रूप में पुनः सामने आकर हमें और दुखी एवं संप्तित्र करेंगे। यदि रूप कुरूप बनाया जा रहा है तो मैं जीवन को क्यों कुरूप बनाऊ ! अशुभ कर्मों की काललब्धि जब तक रहेगी मैं सतायी जाऊगी और उसकी समाप्ति पर ये बन्धन, ये तह-खाने स्वयमेव छूट जायेगें"।

चन्दना चिन्तना की गहराई में डुबती जा रही थी, "रूप तो पौद्गलिक पर्याय है इस लिए नश्वर है, अस्थायी है। क्यों न सच्चे रूप की उपलब्धि का प्रयास करूं ! इस निविड़ कारागार में. मैं इस दिशा में मात्र प्रभु स्मरण के कर ही क्या सकती हूँ। मगर प्रभु स्मरण ही सच्चे रूप की उपलब्धि और स्वरूप प्राप्ति का मंगलाचरण है। कितने बडे २ संकट प्रभु नाम से नष्ट होते देखे जाते हैं"। इस प्रकार प्रभु नाम के स्मरण में खोयी चन्दना कुछ देर बाद तहखाने के उखडे फर्स पर सो गयी।

× × × × ×

कौसाम्बी में आज अति विषाद फैला हुआ है। महाश्रमण का यह चौथा दिन है लगातार तीन दिन से महाश्रमण महावीर बिना पारणा किये खाली वन की ओर चल देते हैं। कोई योग्य आहार विधि महामुनि को नहीं मिल पा रही। नगर-नागरिकों में इस विषय में विविध चर्चा, अनेक सम्भावित अनुमान और आशकायें उठ रही हैं।

एक वयोवृद्ध बुद्धिनन्द कह रहा था, "यह महामुनि अन्य दूसरे साधुओं की भाँति किसी वैभवशाली एवं ऐश्वर्यसम्पन्न दाताओं को नहीं खोजते। जिन्होंने एक बड़े राज्य की विभूति और भौतिक सुख सामग्रियों के अपार कोष को त्याग कर दिगम्बर भेष धारण किया ऐसे ये महाश्रमण निगंठनाथपुत्र वर्धमान हैं। लगता है इनकी अनुकम्पा का वरदहस्त दलित, पीड़ित त्रसित और उपेक्षित मानवों पर होगा। लगता है उसी

के लिए यह सौभाग्य होगा जो उन महाश्रमण को आहार दे। हम जैसे मिथ्याभिमानियों की उन्हें जरूरत नहीं। वे जो अधम-तारक और दीनानाथ है। दुखियों की करूण पुकार को सुन ने वाले है इसलिये एक ऐसा ही करूण क्रन्दन आज उनकी अव-गाहन करेगा। एक दबी आह और परतंत्रता में बन्धी आवाज ही उनके स्वागत का स्वर बनेगी। ऐसे नगण्य समझे जाने वाले के हाथों से ही वे अपनी भिक्षा ग्रहण करेगें जो हृदय से सरल होगा जिसके आसुओं में प्रतिशोध, ईर्ष्या और क्रोध का पानी नहीं बल्कि शान्ति समता और प्रेम का अमृत बह रहा होगा"।

लोग वृद्ध बुद्धिनन्द की बातों को बड़े मनोयोग और एकाग्रता से सुन रहे थे।

× × × ×

महाश्रमण अहार विधि के लिए नगर के राजपथों और विथिकाओं से गुजरते हुए सेठ धनावह के भव्य प्रासाद से होकर गुजरे। तहखाने की झझरियों से बाल कटे, आँखें धँसी और कुम्हलाये पीले चेहरे से युक्त चमक उठी। महामुनि बन्धनों से आवेष्ठित इस पुण्यशालिनी कन्या को देखकर ठिठक कर रह गये। शायद उनकी आहार विधि का यहीं उचित पात्र रहा होगा।

महाश्रमण को अचानक ठिठक कर देख चन्दना अपने लोहसाँकलों के भारों को सावधानी से उठा हाथ में अपने स्वयं के खाने के लिये रक्खे कोदों के चावलों को लेकर खड़ी हो गयी। श्रद्धा और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता में चन्दना कुछ देर तक एक प्रतिमा की भांति जड़वत खड़ी रही। फिर चन्दना की चैतन्यता जागी और फिर विवेक ने उकसाया। भावों में पड़गाहने की बात आयी। लेकिन सोचने लगी, "क्या महामुनि इस पतिता के हाथों से पारणा स्वीकार कर लेगें और फिर

इन दानों के अलावा कुछ और भी तो नहीं हैं" ।

इस प्रकार चेहरे पर दुविधाजनक संकोच...... । लेकिन मन की पवित्रता और हृदय की श्रद्धा ने वचन रुप हो महामुनि को पड़गाहते हुए कहा, "हे मुनिवर अत्र तिष्ठ तिष्ठ ....." बस इतना कहना था कि महाश्रमण वर्द्धमान के चरण तहखाने की ओर मुड़ गये और चन्दना उन दानों को महामुनि का अंजुली में रखने लगी ।

अपार भीड़ चन्दना के इस सौभाग्य को देख रहे थे । चन्दना के अतिशय पुण्य की सराहना कर रहे थे। और चन्दना मन वचन काय की शुद्ध परिणति लिए महाश्रमण को आहार दे कृतार्थ हो रही थी । पारणा समाप्त होते ही बन्धनों में जकड़ी चन्दना घुटना टेककर बन्दना करते हुए "णमो अरिहंताणं .." कहने लगी । दलित पीड़ित मानवों के भाग्य के सहारे वे महा-सन्यासो उस निगडबन्धना चन्दना के पास खडे करूण दृष्टि देखते रहे ।

× × × × ×

वीतरागी, भेदविज्ञान वेत्ता, महापुण्यशाली महाश्रमण वीर ने जिस चन्दना के हाथों से आहार लिया उसका शरीर फिर कब तक बन्धनों में रहता । भाग्य का चक्र तत्क्षण पलटा और कहीं से सेठ धनावह वहाँ आ पहुँचे । चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगे ।

सत्य अहिंसा का महापुजारी, प्रेम, साधना का महासन्यासी आखिर क्या कहता । बस इतना ही कहा कि भद्रे ! क्षमा करने का चरम अधिकार तो इस चन्दना को ही है ।

और चन्दना देखते देखते बन्धन मुक्त हो गयी । महाश्रमण बन की ओर जा चुके थे ।

उसी दिशा में जाने को उद्यत चन्दना का हाथ पकड़कर

सेठ धनावह पितृ-स्नेह पूर्वक चन्दना से कहा " बेटी ! उन महाश्रमण को अपनी सतत साधना के लिए जाने दो और तुम अपने इस भव्य प्रासाद में चलो । मेरे स्वर्ण मुद्राओं और रत्नों के कोष की अधिस्वामिनी आज से तुम होगी और वह सेठानी तो बस अब मात्र वस्त्र और खाने भर को पाया करेगी ।

लेकिन जिस चन्दना की आँखों में प्रायश्चित के आँसू ढुलक रहे थे कह रही थी, "पूज्य पिता जी अब आप इस भव्य प्रसाद में सुख पूर्वक रहो मैं तो इन्हीं महामुनि की शरण लूँगी । मेरे ही कारण अम्मा हमेशा आप पर नाराज रहती थीं । अब और अधिक मैं उनके लिए व्यवधान नहीं बनना चाहती हूँ । और हे आर्यश्रेष्ठि । आपकी करुणा करूणावश ही थी लेकिन उन महाश्रमण की करूणा अकारण थी । आज तक मुझे अपने रूप की सजा मिली अब तो स्वस्वरू। की प्राप्ति के लिए उन महामुनि के पथ का अनुशरण करुंगी ।

सेठधनावह हाथ जोड़ अपनी अनन्य बेटी चन्दना को देखते रहे और चन्दना — सती चन्दना होने के लिए, सत्य की, प्रेम की और सच्चे शान्ति की सतत साधना के लिए बन की ओर दौड़ती जा रही थी । उस महान सन्यासी के दर्शनार्थ उसके पैरों में एक अचिन्त्य गति भर आयी थी ।

चन्दना स्वरूप प्राप्ति के लक्ष्य में उस पथ पर दौड़ती गयी जहाँ सच्चे सुख की सुगन्धित के फूल खिल रहे थे और सत्यंशिवं सुन्दरं की दिव्य-ध्वनि गूँज रही थी ।

———

।। भारत प्रिंटिंग प्रेस बड़ौत ।।